International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.340, Volume 03, No. 02(I), April - June, 2021, pp.217-225

प्राचीन भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार और उसके निवारण के उपाय (प्रमुख प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के अन्तर्गत आये प्रसंग)

डॉ. इन्दु शर्मा*

प्रस्तावना

प्रशासनिक व्यवस्था में संलग्न राजकीय सेवकों (अधिकारियों/कर्मचारियों) में व्याप्त भ्रष्टाचार की प्रवृति का उद्भव संभवतः राजनीतिक प्रशासनिक व्यवस्था के अस्तित्व में आने के साथ ही हो गया था। भारतीय संदर्भ में आकलन करने पर ज्ञात होता है कि राजसेवकों के भ्रष्टाचार में संलिप्त होने के संकेत हमारे देश का नाम 'भारत वर्श' पड़ने से पूर्व के भी उपलब्ध है।[1] राजसेवकों में भ्रष्टाचार की प्रवृति आदिकाल से ही रही है। यही कारण है कि हमारे प्राचीन ग्रन्थों के अन्तर्गत प्रशासन में भ्रष्टाचार के स्वरूप तथा उसके समाधान के लिये उपाय सुझाये गये हैं। इसके साथ ही भ्रश्ट अधिकारियों/कर्मचारियों से जनता की रक्षा हेतु राजाओं को निर्देश भी दिये गये हैं। स्मरणीय है कि प्राचीन भारतीय ग्रन्थ शिक्षण सामग्री तथा ज्ञानार्जन के स्त्रोत मात्र ही नहीं थे, बल्कि प्राचीन भारतीय शासक उन ग्रन्थों की व्यवस्था के अनुरूप अपने शासन का संचालन करते थे।[2] प्राचीन भारतीय शासक अपनी वंश पंरपरा, रूढियों आदि के अनुसार किसी एक अथवा एकाधिक ग्रन्थों (किसी स्मृति, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, महाभारत आदि) को अपने शासकीय विधान (संविधान) के रूप में स्वीकार करके उसके अनुरूप अपने शासन का संचालन करते थे। उदाहरणार्थ गुप्त वंशीय शासकों द्वारा याज्ञवल्क्य स्मृति को अपने राजकीय विधि ग्रन्थ (ऑफिसियल लॉ बुक) के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी।[3] प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में राजसेवकों के भ्रष्टाचार में लिप्त होने के प्रसंग प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। लेकिन सभी प्राचीन ग्रन्थों के अन्तर्गत समाहित उन प्रसंगों को एक लेख में समायोजित कर पाना संभव नहीं है। अतः यहॉ उन्हीं ग्रन्थों के प्रसंग दिये जा रहे हैं जो कि सामान्यतया सर्वमान्य ग्रन्थों की श्रेणी में आते हैं। इनमें मनु–स्मृति, शुक्र नीति सार, महाभारत, याज्ञवल्क्य स्मृति तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अन्तर्गत लोकसेवकों में व्याप्त भ्रष्टाचार की प्रवृति तथा उसके निवारण के लिये दिये गये सुझावों का यहॉ आकलन करने का प्रयास किया जा रहा है। इन ग्रन्थों के रचनाकाल के आधार पर इनका क्रम निर्धारित करना यहॉ न तो संम्भव है तथा न ही आवश्यक है। कारण कि अधिकांश प्राचीन ग्रन्थों के रचना काल के संदर्भ में सभी विद्वान एक मत नहीं हैं। विद्वानों का एक वर्ग कतिपय ग्रन्थों का रचना काल पहले का बतलाता है वहीं दुसरा वर्ग उन्हें पश्चातवर्ती समय का सिद्ध करने का प्रयास करता है। अतः प्रस्तुत शोध पत्र के उद्देश्य हेतु यह पर्याप्त है कि वे ग्रन्थ प्राचीन कालीन हैं और उनमें राजसेवकों के भ्रष्टाचार में संलिप्त होने का उल्लेख हैं। प्राचीन भारतीय राजनीतिक – प्रशासनिक व्यवस्था धर्म तथा नैतिकता पर आधारित थी। शासक पूर्णतः निरंकुश नहीं थे। उन पर धर्म शास्त्रों के अनुरूप प्रशासन को संचालित करने की बाध्यता थी। इसलिये ही कहा जाता है कि प्राचीन भारत में क्षत्रियों का राज रहा तथा यहॉ ब्राह्मणों[4] का शासन रहा। ;जेम ज्ञींजतपलें तनसमे प्दकपं ंदक जेम ठतीउपदे हवअमतदमक प्दकपंद्ध इसका तात्पर्य यह है कि ब्राह्मणों (ऋशियों, मुनियों, विद्वानों) द्वारा रचित विधान (धर्म ग्रन्थों) के अनुरूप शासकों को राजकार्य संपादित करवाना होता था। उस व्यवस्था का वर्तमान राजनीतिक प्रशासनिक व्यवस्था के आलोक में आकलन किया जाये तब कहा जा सकता है कि विधायिका से सम्बन्धित कार्य (विधान–नियम निर्माण) ब्राह्मणों (ऋषियों, मुनियों, विद्वानों) द्वारा किया जाता था तथा कार्यपालिका से सम्बन्धित कार्य (नीतियों का क्रियान्वयन) शासकों द्वारा किये जाते थे।

* विभागाध्यक्ष – लोक प्रशासन, एस0 एस0 जैन सुबोध पी0 जी0 महिला महाविद्यालय, रामबाग, जयपुर, राजस्थान।

मनुस्मृति

जिन ग्रन्थों के दिशा निर्देशों के आलोक में प्राचीन भारतीय शासक अपने शासन का संचालन करते थे उनमें मनुस्मृति का प्रमुख स्थान है। यह ग्रन्थ प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था तथा राजधर्म व्यवस्था के नियमन एवं संचालन के संदर्भ में निर्विवाद रूप से प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता था। इस ग्रन्थ में राजा तथा प्रजा के अधिकारों एवं दायित्वों का निर्धारण किया गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार पृथ्वी पर सम्पूर्ण चराचर की रक्षार्थ ईश्वर द्वारा राजा की सृश्टि की गयी। राजा का दायित्व था कि वह शास्त्रानुसार न्यायपूर्वक अपने राज्य में निवास करने वाली समस्त प्रजा की रक्षा करे।[5] प्रजा की रक्षा केवल शारीरिक रक्षा ही नहीं अपितु उसकी सम्पत्ति और सम्मान की रक्षा भी सम्मिलित थी। राजा के लिये आवश्यक था कि वह प्रजा को बाह्य तथा आन्तरिक दोनों प्रकार के शत्रुओं से बचाये। आन्तरिक शत्रुओं में राजसेवकों को भी सम्मिलित किया गया है। मनु की दृढ़ मान्यता थी कि राजा के रक्षाधिकारी प्रायः अनधिकृत रूप से दूसरों का धन लेने वाले अर्थात घूसखोर होते हैं। उन शठों से प्रजा की रक्षा के उपाय राजा द्वारा निश्चित रूप से किये जाने चाहिये। इस प्रकार के पाप बुद्धि तथा भ्रष्टाचारी अधिकारियों को जो प्रजा से रिश्वत लेते हैं उनके लिये मनु के निर्देश हैं कि राजा उनकी सम्पूर्ण सम्पति ले ले तथा उन अधिकारियों को अपने राज्य से निश्काशित कर दें।[6]

मनु स्मृति के अन्तर्गत चोरों की दो श्रेणी दी गई है – प्रथम प्रत्यक्ष चोर (प्रत्यक्ष कंटक) – रिश्वत लेने वाले तथा सामान का विक्रय करते समय लोगों को ठगने वाले। द्वितीय – परोक्ष चोर – सेंध लगाकर सामान चुराने वाले तथा डाका डालने वाले। इस प्रकार रिश्वत खोरों को चोरों की श्रेणी में – प्रत्यक्ष कंटक माना गया है।[7] मनु द्वारा रिश्वतखोरों तथा तथा चोरों की जानकारी करने हेतु गुप्तचरों की नियुक्ति की मंत्रणा दी गयी है। राजा के लिये यह अनिवार्य था कि वह इस प्रकार के भ्रश्टाचारियों को दण्ड दे। कारण कि जिस प्रकार अवध्य का वध करने पर जितना अधर्म होता है उतना ही अधर्म वध करने योग्य व्यक्तियों का वध न करने पर राजा को होता है। इतना ही नहीं, इस प्रकार के व्यक्तियों को दण्ड देने वाले शासक मरणोपरांत स्वर्ग में जाते हैं। इसके विपरित जो राजा चोरों तथा रिश्वतखोरों को दण्डित न करते हुए भी प्रजा से कर ग्रहण करता है, उस राज्य में प्रजा क्रुद्ध हो जाती है तथा वह राजा स्वर्ग पाने के अधिकार से वंचित हो जाता है।[8]

सारतः मनु के अनुसार राजसेवकों में रिश्वतखोरी की प्रवृति होती है। उन पर कड़ी नजर रखना आवश्यक है तथा रिश्वत लेने का अपराध सिद्ध होने पर उनको कठोरतम दण्ड देना चाहिये। अर्थात उन राजसेवकों को अपने देश से निश्काशित कर देना चाहिये। ऐसा न करने पर शासक के विरूद्ध प्रजा द्वारा विद्रोह किये जाने की संभावनाये बढ़ जाती हैं। इतना ही नहीं उस शासक को मरणोपरान्त भी दण्ड मिलेगा अर्थात वह स्वर्ग जाने के अधिकार से वंचित हो जायेगा। इस प्रकार शासक द्वारा राजसेवकों को रिश्वत लेने से न रोक पाने से उस शासक को इहलोक में प्रजा के क्रोध का सामना करने तथा परलोक में स्वर्गारोहण के अधिकार से वंचित रहने का भय दिखाया गया है।

शुक्र नीति सार

प्राचीन ग्रन्थों में शुक्र नीति सार का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस ग्रन्थ में भी राजसेवकों में भ्रष्टाचार की प्रवृति व्याप्त होने के प्रमाण मिलते हैं। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत राजा के महत्वपूर्ण कार्यों में से एक कार्य यह भी बताया गया है कि राजा प्रतिदिन ढिंढोरा पिटवाकर प्रजा के लिये दिशा निर्देश देने की व्यवस्था करे। इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रजा को कतिपय वर्जित कृत्य न करने के लिये आदेश दिये जायें। इस श्रेणी के सैंकड़ों कृत्य गिनाये गये हैं जिनमें चोरी न करना, मिलावट न करना, कम न तोलना आदि सम्मिलित हैं। इन्हीं कृत्यों के साथ ही प्रजाजनों को यह भी निर्देश दिया जाये कि वे राजसेवकों को रिश्वत न दें। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि अन्य ग्रन्थों में लोक सेवकों द्वारा रिश्वत लेने को अपराध की श्रेणी में रखा गया है। लेकिन नागरिकों को रिश्वत न देने के लिये वर्जित नहीं किया गया है। अतः कहा जा सकता है कि संभवतः शुक्र रिश्वत लेने तथा देने दोनों को ही अनुचित मानते थे। यह स्थिति वर्तमान में प्रचलित कानून के अधिक निकट प्रतीत होती है।

शुक्रनीति के अन्तर्गत राजसेवकों के उत्कृश्ट और निकृश्ट लक्षण बताये गये हैं। राजसेवकों द्वारा रिश्वत लिये जाने को निकृश्ट लक्षणों की श्रेणी में रखा गया है[10] तथा राजा को निर्देश दिये गये हैं कि वह प्रजा से जो कर लेता है उसके बदले में वह प्रजा को चोर–डाकुओं तथा दुर्वृत (भ्रश्ट/रिश्वतखोर) राजकर्मचारियों तथा अधिकारियों से रक्षा करे।[11] इसके साथ यह भी कहा गया है कि जिस राज्य में अधिकारी वर्ग तथा राजा दोनों सदाचारी होते हैं उस राज्य में लक्ष्मी स्थिर भाव से अधिक मात्रा में सदैव सामने ही रहती है।[12]

इस प्रकार के उदाहरणों से स्पश्ट है कि शुक्रनीति के रचना काल में राजसेवकों में भ्रष्टाचार की प्रवृति ज्यादा थी तथा उसे समाज में अच्छा नहीं माना जाता था। आचार्य शुक्र की दृश्टि में न्याय व्यवस्था में भ्रष्टाचार की सर्वाधिक संभावनायें हैं। इसलिये इस व्यवस्था से सम्बद्ध व्यक्तियों के चरित्र, आचरण तथा कार्यपद्धति के संदर्भ में स्पश्ट दिशा निर्देश दिये हैं।[13] इनमें सर्वप्रथम राजा स्वयं क्रोध एवं लोभ को छोड़कर अधिवक्ता, अमात्य, ब्राह्मण एवं पुरोहितों के साथ एक निश्ट मन से न्यायार्थ उपस्थित होकर क्रमशः वादों (मुकदमों) को देखे। बुद्धिमान राजा और उसके सभासद अकेले और एकान्त में वादी–प्रतिवादी के मुकदमों को कभी नहीं देखें और न उनकी बातें सुने। राग, द्वेश, लोभ, भय और वादी–प्रतिवादी की एकान्त में बातें सुनना, ये पांचों निश्चित रूप से पक्षपात के कारण माने जाते हैं। राजा यदि वादी–प्रतिवादी की बातों को सुनकर सभासदों की राय लिये बिना स्वयं कोई निर्णय करता है तब उसे नरक की प्राप्ति, प्रजा का नाश, शत्रु सेना से भय तथा उसकी आयु का नाश होता है। अतः राजा को विधि सम्मत रूप से मुकदमों की सुनवाई करनी चाहिये। विधिवेत्ता, ज्ञानी, चरित्रवान, शील और गुण से युक्त राग–द्वेश रहित, धर्मात्मा, आलस्यहीन, काम, क्रोध और लोभ को जीतने वाले तथा प्रियावादी व्यक्ति चाहे वे किसी भी जाति के हो, उन्हें सभासद (जूरी, पंच) पद पर नियुक्त करना चाहिये। जब मुकदमें की सुनवाई प्रारंभ हो जाये तब लेखक (न्यायालय का लिपिक, रीडर) गवाहों के बयान उस समय प्रचलित लिपि और भाशा में लिखे। यदि कोई लेखक (लिपिक) वादी–प्रतिवादी द्वारा कही गयी बातों (बयान) को जैसा वह कहे, उससे भिन्न लिखे, तब राजा तत्परता के साथ उस लेखक (लिपिक) को चोर की भांति दंड दे। सभासद भी उक्त रीति से लिखे गये बयान का अनुमोदन न करें। यदि वे अपने अधिकार के बल पर अनुमोदन करें तब राजा उन्हें भी चोर की भांति दंड दे।

सारतः शुक्र के समय में सामान्य राजसेवकों तथा न्याय न्याय व्यवस्था से सम्बद्ध राजसेवकों में भ्रष्टाचार की प्रवृति थी और उसको रोकने के प्रयास किये जाने लगे थे।

महाभारत

स्मरणीय है कि प्राचीन काल में भारतीय राजनीतिक–प्रशासनिक व्यवस्था धर्म पर आधारित थी। अर्थात् राजा तथा राजसेवक धर्म–ग्रन्थों के अन्तर्गत निर्धारित रीति–नीति के अनुरूप आचरण करने हेतु बाध्य थे तथा तदनुसार आचरण न करने के फलस्वरूप केवल इहलोक में ही राजा तथा राजसेवकों का अपयश और सर्वनाश होना नहीं माना जाता था अपितु धर्मानुसार आचरण न करने पर वे पाप के भागीदार होने के प्रति जन सामान्य में विश्वास था। महाभारत में निर्देश दिया गया है कि राजा को अपना भाव शुद्ध रखकर निश्कपट व्यवहार से प्रजा के पालन में लगे रहना चाहिये। इससे उसको धर्म और कीर्ति मिलती है। राजा अकेला सब काम नहीं कर सकता है। अतः उसे मंत्रिमण्डल बनाना चाहिये जिसमें वेद विद्या के विद्वान, स्नातक, बाहर–भीतर से शुद्ध एवं निर्भीक हों ऐसे चार ब्राह्मण, शरीर से बलवान तथा शस्त्र विद्या के ज्ञाता आठ क्षत्रिय, धन धान्य से सम्पन्न, इक्किस वेश्य, विनयशील तथा प्रवित्र आचार, विचार वाले तीन शुद्र आठ गुणों से युक्त और पुराण विद्या जानने वाला एक सूत जाति का व्यक्ति सम्मिलित किया जाये। इस मंत्रिमण्डल के प्रत्येक सदस्य की आयु पचास वर्श के लगभग होनी चाहिये, सारा मंडल निर्भीक, किसी की निन्दा न करने वाला अधिकार के अनुसार श्रुति – समृतियों का विद्वान, विनयशील, समदर्शी, वादी – प्रतिवादी के मामलों का निपटारा करने में समर्थ, लोभ रहित तथा सात प्रकार के दुर्व्यसनों से दूर रहने वाला होना चाहिये।[14] इस प्रकार राजा तथा उसके मंत्रिमण्डल के सदस्यों की चारीत्रिक विशेशताओं का उल्लेख किया गया। इस प्रकार के उच्च चरित्र के व्यक्ति जब सर्वोच्च पदों पर हो तब देश में स्वच्छ प्रशासन के लिये आशान्वित रहा जा सकता है। फिर भी उस काल में भी राजसेवकों में रिश्वत लेने की प्रवृति विद्यमान थी। महाभारत काल में जो राजसेवक भ्रष्टाचार में लिप्त होते थे

और जनता से रिश्वत लेते थे (सुवप्रग्रहणों) उनको ब्रह्म हत्यारों के समान माना जाता था।[15] इस उल्लेख से स्पश्ट होता है कि महाभारत काल में राजसेवकों में भ्रष्टाचार व्याप्त था तथा इसे साधारण अपराध नहीं माना जाता था। कत्तिपय अन्य अपराधों के लिये प्रायश्चित का प्रावधान किया गया है। लेकिन रिश्वत लेने वाले राजसेवक के लिये भी किसी प्रकार के प्रायश्चित का प्रावधान नहीं है अर्थात् यह अपराध अक्षम्य है। महाभारत के शान्ति पर्व के अन्तर्गत राजा को स्पश्ट निर्देश दिये गये हैं कि लोभी मनुश्य दूसरों का धन हड़प लेता है (रिश्वत लेता है) अतः राजा ऐसे व्यक्तियों को राजसेवक न रखें।[16] इसके साथ ही राजा के अधीनस्थ अधिकारियों यथा नगराध्यक्षों के पास गुप्तचर रखने के निर्देश दिये गये हैं। वे गुप्तचर प्रजा के साथ होने वाले ग्रामाध्यक्षों के बर्तावों की सूचना नगराध्यक्षों को दें। गुप्तचर जांच से जो अधिकारी प्रजा को चूसने वाले, पापी, दूसरों का धन हड़पने वाले (रिश्वतखोर) तथा शठ प्रकृति के प्रतीत हों, ऐसे अधिकारियों से प्रजा की रक्षा करें।[17] सारतः महाभारत काल में राजसेवकों द्वारा रिश्वत लेने को सामान्य अपराध नहीं माना जाता था। इसके लिये कठोरतम दण्ड देने की व्यवस्था थी।

याज्ञवल्क्य स्मृति

याज्ञलव्क्य स्मृति के अन्तर्गत भी राजसेवकों का भ्रष्टाचार में लिप्त होने के उल्लेख हैं। इस ग्रन्थ में निर्देश दिया गया है कि जो व्यक्ति राज्य कार्यों हेतु नियुक्त किये गये हैं उनके आचरण के सम्बन्ध में गुप्तचरों द्वारा जानकारी एकत्र की जाये। तथा उन अधिकारियों एवं कर्मचारियों में से जिनका आचरण उत्कृश्ट हो तथा जो सदाचारी हों उनको राजा द्वारा सम्मानित किया जाना चाहिये। इसके विपरीत जिन अधिकारियों और कर्मचारियों का आचरण निकृश्ट हो तथा जो कदाचारी (भ्रष्टाचार में लिप्त) हों उनको उनके अपराध के अनुपात में राजा द्वारा दण्ड दिया जाना चाहिये। इस ग्रन्थ में विशेष रूप से निर्देश दिये गये है कि जो राजसेवक रिश्वतखोरी मे संलिप्त पाये जायें अर्थात जो प्रजा से घूस लेकर अपनी आजीविका चलाते हों उनको राजा अपने राज्य से निश्कासित कर दे तथा उनकी संपूर्ण संपत्ति छीन ले।[18] इस संदर्भ में याज्ञवल्क्य द्वारा मत किया गया है कि उपरोक्त कोटि के दण्ड का किसी लोभी और चंचल बुद्धि वाले राजा द्वारा न्यायपूर्वक प्रयोग करना संभव नहीं है। इस प्रकार के दण्ड का न्यायपूर्वक प्रयोग वही राजा कर सकता है जो शुचि (पवित्र) हो तथा उसके सहायक उत्तम श्रेणी के हों। राजा द्वारा किसी को अधर्म पूर्वक दंडित करने के परिणामस्वरूप उस राजा को स्वर्ग नहीं मिलता, उसकी कीर्ति और लोकों का विनाश होता है। तथा यदि वह विधिपूर्वक (शास्त्रानुसार) किसी को दण्डित करता है तब उसे मरणोपरान्त स्वर्ग मिलता है, उसकी कीर्ति फैलती है तथा उसे विजय मिलती है।[19]

इस प्रकार से याज्ञवल्क्य स्मृति में भी राजसेवकों में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा उसके निवारण के उपाय उपलब्ध हैं।

अर्थशास्त्र

आचार्य कौटिल्य द्वारा सृजित ग्रन्थ अर्थशास्त्र बहुआयामी प्रकृति का ग्रन्थ है। इसके अन्तर्गत आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक, न्यायिक शासन एवं विज्ञान आदि विविध विशयों को समाविश्ट किया गया है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रशासनिक व्यवस्था के प्रत्येक आयाम को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। प्रशासन तंत्र में व्याप्त कमियों–विशेष रूप से राजसेवकों में भ्रष्टाचार की प्रवृति के संदर्भ में भी इस ग्रन्थ में विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है। राजकीय सेवकों के आर्थिक प्रकरणों में भ्रष्टाचार में संलिप्त पाये जाने के संदर्भ में कतिपय आचार्यो का अभिमत रहा है कि जिस अध्यक्ष (राजकीय अधिकारी) की आय कम होने पर भी वह व्यय अधिक करता है वह राज्य के धन (राजस्व) का अनधिकृत रूप से भक्षण (हरण/चोरी) करता है। लेकिन इसके विपरीत यदि किसी अधिकारी की आय अधिक होती है और वह अधिकारी व्यय कम करता है वह राज्य के राजस्व का भक्षण नहीं करता है लेकिन आचार्य कौटिल्य इस मत से सहमत नहीं थे। उनका अभिमत यह था कि अधिकारी की आय तथा व्यय शुद्ध है अथवा अशुद्ध है इसकी जानकारी गुप्तचरों के द्वारा ही सुनिश्चित की जा सकती है। अर्थात उनका अभिमत था कि व्यय कम करने वाला अधिकारी भी भ्रष्टाचार में लिप्त हो सकता है।[20] इतना ही नहीं वे तो प्रत्येक राजकीय सेवक को आर्थिक प्रकरणों में न्यूनाधिक रूप से भ्रश्ट मानते थे। उनकी

दृढ़ अवधारणा थी कि राजकीय सेवकों का आचरण आर्थिक प्रकरणों में अपेक्षानुरूप नहीं रह पाता है। अर्थात् वे निश्चित रूप से भ्रष्टाचार में संलिप्त रहते ही हैं। उनकी मान्यता थी कि जिस प्रकार जीभ पर शहद अथवा विश रखे जाने पर उसकी अनुभूति जीभ को न हो पाये वह असंभव है उसी भांति राजकीय सेवक (अर्थाधिकारी) राज्य के धन को हाथ लगाये और उसमें से न्यूनाधिक अपने उपयोग में न लावें यह भी असंभव है। अर्थात चाहे अति न्यून मात्रा में ही सही लेकिन राजकीय सेवक राज्य के धन में से अपने उपयोग के लिए अनधिकृत रूप से रख ही लेते हैं। राजकीय सेवकों द्वारा राज्य के राजस्व का भक्षण किये जाने क समय और विधि को ज्ञात कर पाना भी आचार्य कौटिल्य ने असंभव माना है। उनका अभिमत है कि जिस भांति जल में विचरण करती हुई मछलियों द्वारा जलपान किया जाना ज्ञात करना संभव नहीं है उसी भांति राजकीय सेवा में नियुक्त युक्तों (राजकीय अधिकारी/कर्मचारी) द्वारा राजस्व हरण की जानकारी कर पाना संभव नहीं है। उनका मत है कि आकाश में विचरण करते हुए पक्षियों के उड़ने की गति मापी जा सकती है किन्तु गुप्त अभिप्राय वाले (भ्रश्ट) युक्तों (अधिकारियों) की कार्य पद्धति का आकलन का पाना असंभव है। अर्थात वे किस प्रकार कार्य करके राजस्व का हरण कर लेते हैं यह जान लेना सहज संभाव्य नहीं है।[21]

आचार्य कौटिल्य राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनाये रखने के पक्षधर थे। उनकी मान्यता थी कि राज्य के समस्त कार्य राजकोश पर निर्भर रहते हैं अतः सर्वप्रथम कोश वृद्धि को सर्वोच्च प्राथमिकता देना आवश्यक है। उन्होंने राजकोश की वृद्धि के नौ उपाय सुझाये हैं। इन उपायों में से एक उपाय अध्यक्षों (राजकीय अधिकारियों/कर्मचारियों) द्वारा राजकोश में से किये जाने वाले धनापहरण पर नियंत्रण रखना भी सम्मिलित है। अध्यक्षों द्वारा राजकोश को क्षति पहुंचाने वाले आठ ढंग बताये हैं, वे हैं – (1) प्रतिबन्ध, (2) प्रयोग, (3) व्यवहार, (4) अवस्तार, (5) परिहापण, (6) उपभोग, (7) परिवर्तन और (8) उपहार।[22]

- प्रतिबन्ध – राजकीय करों में वृद्धि न करना (नये कर न लगाकर), पूर्व में लगाये गये करों की वसूली न करना अथवा वसूली करने के उपरान्त भी राजकोश में जमा न करवाना 'प्रतिबन्ध' की श्रेणी में आते हैं।
- प्रयोग – राजकीय कोश में जमा करवाये जाने योग्य धन को अध्यक्ष द्वारा अपने स्वयं के लाभ के लिए ब्याज आदि के लिए उपयोग में लेने को 'प्रयोग' कहा जाता है।
- व्यवहार – राजकीय सेवकों द्वारा कोश में जमा कराने योग्य धन से व्यापार करना 'व्यवहार' कहलाता है।
- अवस्तार – निर्धारित समय हो जाने पर भी राजस्व प्राप्त न करना अथवा निर्धारित समय न होने पर भी राजस्व प्राप्त करने को 'अवस्तार' कहा जाता है।
- परिहापण – सुनिश्चित आय को न्यून करना अथवा निश्चित व्यय को बढाना 'परिहापण' है।
- उपभोग– राजकीय धन का राजसेवकों द्वारा स्वयं अथवा उनसे सम्बन्धित अन्य व्यक्ति द्वारा उपयोग किया जाना 'उपभोग' है।
- परिवर्तन – अन्य द्रव्य द्वारा राज द्रव्यों को ग्रहण करना 'परिवर्तन' है। अर्थात् राजसेवक द्वारा अपनी किसी सस्ती वस्तु के बदले में राजकोश की मूल्यवान वस्तु ले लेना इसी श्रेणी में आता है।
- उपहार – राजसेवकों द्वारा प्राप्त आय का उल्लेख न किया जाना, लिखित व्यय का प्रदान न किया जाना तथा जमा कराये हुए धन को बाकी निकालना 'उपहार' है।

इन उपरोक्त विधियों से राजस्व की क्षति करने वाले अधिकारियों पर दण्ड लगाने का भी प्रावधान किया गया था। 'प्रतिबन्ध' द्वारा कोशक्षयकारी अध्यक्ष पर देय कोश का दस गुणा दण्ड, 'प्रयोग' तथा 'व्यवहार' के माध्यम से लाभ कमाने वाले अधिकारी पर इस प्राप्त किये गये लाभ का पांच गुणा दण्ड लगाने, 'परिहापण' करने वाले अधिकारी पर हानि का चार गुणा दण्ड लगाने का प्रावधान था। रत्न का उपभोग करने वाले राज सेवक को प्राण दण्ड, मूल्यवान धातुओं (सार) का उपयोग करने वाले सेवक पर मध्यम साहस दण्ड, सारहीन (फल्गु) तथा जंगल से प्राप्त वस्तुओं (कुप्य) का उपयोग करने पर वस्तु का मूल्य तथा उसके बराबर दण्ड का प्रावधान था।[23]

आचार्य कौटिल्य के मतानुसार अध्यक्ष (राजकीय अधिकारी/कर्मचारी) राज्य के धन (राजद्रव्यों) का अपहरण चालीस उपायों से करने में समर्थ होते हैं।[24] वे हैं:—

- पूर्व प्राप्त कर आदि का बाद में उल्लेख किया जाना,
- बाद में प्राप्त होने योग्य कर आदि का पहले ही उल्लेख कर लिया जाना,
- ग्राह्म का अग्रहण करना,
- अग्राह्म को ग्रहण करना,
- प्राप्त को अप्राप्त कहना (लिखना),
- अप्राप्त को प्राप्त लिखना,
- अल्प प्राप्ति को अधिक प्राप्ति लिखना,
- अधिक प्राप्ति को अल्प प्राप्त लिखना,
- एक वस्तु की प्राप्ति को अन्य वस्तु की प्राप्ति लिखना, अर्थात प्राप्त कुछ हुआ और लिखा कुछ और,
- किसी साधन से प्राप्त को अन्य के नाम लिखा जाना,
- देय का न दिया जाना,
- अदेय का प्रदान किया जाना,
- समय पर न देना,
- असमय पद प्रदान करना,
- अल्प दान को अधिक प्रदान एवं अधिक प्रदत्त को अल्प प्रदान लिखना,
- अन्य वस्तु दी गयी और अन्य वस्तु लिखी गयी,
- किसी अन्य के लिए दी गई वस्तु को किसी दूसरे को प्रदान करना,
- कर आदि की प्रविश्टि को अप्रविष्ट रखना,
- अप्रविश्ट को प्रविश्ट लिखना,
- बिना मूल्य के लिए गये कुप्य (वन सम्पदा) के विशय में मूल्य प्रदान,
- प्रदत्त मूल्य के विशय में अप्रदत्त लिखना,
- अल्प मूल्य प्रदान लिखना,
- एकत्र प्राप्त को विकीर्ण कर प्राप्त करना,
- पृथक–पृथक प्रापव्य को एकत्र प्राप्त करना,
- बहुमूल्य वस्तु का अल्प मूल्य से परिवर्तन,
- अल्प मूल्य वस्तु से बहुमूल्य से परिवर्तन,
- मूल्य की वृद्धि करना,
- मूल्य का ह्यस करना,
- वर्ष के महिनों में अन्तर (असंगति) करना,
- मास के दिनों में अन्तर (असंगति करना),
- समागम की असंगति,
- आय मुख से असंगति,
- कार्मिकों की असंगति,
- निर्वर्तन में असंगति,
- पिण्ड वैशम्य,
- वर्ष वैशम्य,
- मूल्य वैशम्य,
- मान वैशम्य,
- मापन वैशम्य तथा
- भाजन वैशम्य।

आचार्य कौटिल्य द्वारा राजकीय सेवकों द्वारा उपरोक्त प्रकार से राजस्व हरण के लिए भी दण्ड का प्रावधान किया गया है। राजस्व हरण की आशंका होने पर उपाध्यक्ष, भाण्डागारिक, लेखक, प्रतिग्रहीता, दाता, दापक (दिलाने वाला) मंत्री के सहायक व कर्मचारी इन सब को बुलाकर पूछा जाना चाहिए यदि मिथ्या बोलें तब प्रत्येक अधिकारी को समान रूप से दंडित किया जाना चाहिये।[25]

राजस्व हरण की आशंका होने पर यह व्यवस्था की जाये कि जनपद में आयुक्त द्वारा पीड़ित प्रजाजनों को अपना ज्ञापन प्रस्तुत करने हेतु कहा जाये। अपनी क्षति बतलाने वालों की क्षतिपूर्ति करवायी जाये। यदि किसी अधिकारी के विरूद्ध अनेक अभियोग लगाये जायें और वह उन्हें स्वीकार न करे तब यदि उन अभियोगों में से एक भी अभियोग सिद्ध हो जाये तब उस अधिकारी के सभी अभियोगों में दोशी माना जाये। यदि अत्यधिक धन अपहरण का आरोप हो और अल्पधन का अपहरण प्रमाणित होने पर भी उस अधिकारी को सम्पूर्ण धन के लिए उत्तरदायी माना जाये। आचार्य कौटिल्य का अभिमत है कि जो राजकीय अधिकारी दव्योत्पति क्षीण करता है वह राजस्व का भक्षण करता है। यदि वह अज्ञान आदि कारणों से राजकोश को हानि पंहुचाता है तब उसके अपराध के अनुसार विनश्ट धन का एक गुणा, दो गुणा अथवा अधिक धन उससे लिया जाये। कौटिल्य द्वारा राजस्व/राजा के धन की रक्षा के ही उपाय नहीं सुझाये गये हैं अपितु राजसेवकों द्वारा जन साधारण से अधिक धन वसूल करने को भी उचित नहीं माना है। उनका मत था कि जो अधिकारी निश्चित द्रव्योत्पति (समुदाय) से दो गुणा द्रव्योत्पति करता है वह अधिकारी जनपद (साधारण जनता) का भक्षण करता है। यदि वह अधिकारी अपने द्वारा एकत्र किया गया सम्पूर्ण द्रव्य राजा को अर्पित करता है (राजकोश में जमा करवाता है) तब अल्प अपराध होने पर, उसे इस प्रकार के कार्यों से निवारित कर दिया जाये। यदि अपराध गंभीर हो तब उसे अपराध के अनुसार दण्डित किया जाये।

अधिकारियों द्वारा भ्रष्टाचार के माध्यम से धन संचित करके उसका संनिधान (जमीन में गाड़ देना), अवनिधान (रक्षा करना) अथवा अवस्त्राव (संचार) किया जाता है अर्थात अधिकारी उस धन को अपने घर में रखता है या शहर/ग्राम निवासियों के पास रखता है या शत्रु देश (विदेश) में प्रेशित करता है उस अधिकारी से सम्बद्ध मंत्री, मित्र, नौकर एवं बन्धु–बांधवों का तथा आय व्यय का स्त्री गुप्तचर पूरा ध्यान रखें। जब वह अपना धन विदेश (शत्रु देश) में प्रशित करता है तब स्त्री गुप्तचर उसका रहस्य ज्ञात करें। यदि अधिकारी द्वारा विदेश में धन भेजे जाने की पुश्टि हो जाये तब उस अधिकारी का वध करा दिया जाना चाहिये तथा इसके लिये शत्रु शासक के आदेश अथवा उसके पत्र का बहाना बनाया जाना चाहिये।

आचार्य कौटिल्य द्वारा जहां भ्रष्ट अधिकारियों के लिए दण्ड स्वरूप वध अथवा साधारण दण्ड आदि का प्रावधान किया गया है वहीं उन अधिकारियों के लिए जो राजकोश (राजस्व) का अपहरण नहीं करते हों, अपितु न्याय पूर्वक उसमें वृद्धि करते हों और राज्य के हित संपादन में लगे रहते हैं उन्हें राजा द्वारा सदैव अधिकारी के पद पर बनाये रखने की व्यवस्था भी की गयी है।

राजकीय सेवक भ्रष्टाचार से विरत रहें इसके लिए कौटिल्य द्वारा उन्हें आवश्यक और उचित वेतन समय पर देने पर जोर दिया गया है। जिससे राजसेवक अपने स्वयं का तथा अपने परिवार का भरण पोशण कर सके तथा धर्म अर्थ से पीड़ित न रहे।[26]

इस प्रकार कौटिल्य द्वारा राजसेवकों में व्यापत भ्रष्टाचार की प्रवृति को चिन्हित करने, उसका वर्गीकरण करने, उनके लिये दण्ड की व्यवस्था करने आदि के संदर्भ में सविस्तार व्याख्या की गई है। आचार्य कौटिल्य द्वारा राजसेवकों से राजकोश की रक्षा करने के साथ ही उनसे प्रजा की रक्षा करने के उपाय भी सुझाये गये हैं। जो सत्यनिश्ठ और सदाचारी राजसेवक हैं उनको सम्मान देने की आवश्यक्ता प्रतिपादित की गयी है। राजसेवक रिश्वत का रास्ता न अपनाये – इसके लिये आचार्य कौटिल्य द्वारा सुझाव दिया गया है कि राजसेवकों को पर्याप्त सुविधायें दी जायें ताकि वे अपना स्वयं का तथा अपने परिवार का समुचित रूप से भरण पोशण करने के साथ ही सम्मानपूर्वक जीवन यापन कर सकें।

उल्लेखनीय है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र की प्रकृति सैद्धान्तिक है जिसके अन्तर्गत राज्य की समस्त संभावित प्रशासनिक गतिविधियों को दृष्टिगत रखते हुए किसी भी शासन प्रणाली के लिये प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना करने हेतु एक आदर्श पद्धति की परिकल्पना की गई है तथा तदानुरूप सूक्ष्म तथ्यों को ध्यान में रखते हुए सविस्तार विवेचन किया गया है। एक सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था, यहॉ तक कि वर्तमान युग में भी प्रशासनिक व्यवस्था का निर्धारण करने तथा उसे प्रयुक्त करने हेतु न्यूनाधिक रूप से वैसा ही किया जायेगा जैसा कि आचार्य कौटिल्य द्वारा सुझाया गया है। यहॉ यह भी उल्लेखनीय है कि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत जिस प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था का प्रावधान किया गया है, आचार्य कौटिल्य उस व्यवस्था के रचनाकार अथवा सृजक नहीं थे। क्योंकि विगत में भी मध्य एशिया, यूरोप तथा भारत में इस प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्थायें विद्यमान रही थी उनमें नवाचार, संशोधन एवं सुधार करते हुए अपने युग की परिस्थितियों तथा आवश्यक्ताओं के अनुरूप प्रयुक्त किया।[27] यहां यह उल्लेख किये जाने का आशय यह स्पश्ट करना है कि आचार्य कौटिल्य द्वारा राजसेवकों में व्याप्त भ्रष्टाचार की प्रवृति का उल्लेख किया है वैसी ही भ्रष्टाचार की प्रवृति के प्रकरण अन्य समकालिन प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अन्तर्गत भी उपलब्ध रहे होंगे, उनका अध्ययन करके कौटिल्य द्वारा अर्थशास्त्र में समयोजित किया गया होगा। अतः कहा जा सकता है कि राजसेवकों में भ्रष्टाचार की प्रवृति आदि काल से ही चली आ रही है। आचार्य कौटिल्य ने अपनी राजनीतिक–प्रशासनिक व्यवस्था का सृजन किसी एक राजा (चन्द्रगुप्त मौर्य) के लिये नहीं किया बल्कि समस्त भावी शासकों हेतु किया है। उन्होंने स्वयं कहा है कि कौटिल्य ने समस्त शास्त्रों के ज्ञान के आधार पर तथा व्यावहारिक अनुभव तथा प्रयोग के आधार पर राजाओं के लिए (नरेन्द्रार्थे) इस शासन विधि का निर्माण किया है।[28] अतः कहा जा सकता है कि कौटिल्य के पश्चातवर्ती अनेक शासकों द्वारा सदियों तक आचार्य कौटिल्य द्वारा सृजित प्रशासनिक व्यवस्था का अनुसरण किया जाता रहा है। ऐसी व्यवस्था केवल उत्तर भारत में ही रही हो, ऐसा नहीं है। आचार्य कौटिल्य द्वारा सुझाई गयी राजनीतिक प्रशासनिक व्यवस्था का अनुसरण दक्षिण भारत में भी किया जाता रहा है। इसके उदाहरण तमिल साहित्य में देखे जा सकते हैं। वहां कौटिल्य के पश्चातवर्ती समय के विचारकों द्वारा भी अपने ग्रन्थों में वैसी ही व्यवस्था का अनुसरण किया गया है जैसा कि आचार्य कौटिल्य ने राजा, शासन, प्रशासन आदि के संदर्भ में व्यवस्था की थी।[29]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राजनीतिक–प्रशासनिक व्यवस्था का स्तर कोटि का बना रहे, प्रजा को न्याय मिले, उसका अनावश्यक शोषण न हो, राजसेवक प्रजा को न चूसें अर्थात प्रजा से रिश्वत न लें तथा उनका आचरण उचित बना रहे – इन सभी आयामों के सन्दर्भ में उपरोक्त सभी ग्रन्थों के रचनाकार लगभग एक मत हैं। यह व्यवस्था आदर्शात्मक प्रतीत होती है तथा ऐसा तभी संभव है जबकी राजनीतिक – प्रशासनिक व्यवस्था से संलग्न सभी व्यक्तियों–शासन से सामान्य राजसेवकों तथा प्रजा का आचरण उचित रहेगा तब प्रशासन में भ्रष्टाचार का स्तर न्यून होगा। इन विचारकों द्वारा राजनीतिक–प्रशासन व्यवस्था से सम्बद्ध रहने वाले व्यक्तियों हेतु कतिपय प्रतिमान निर्धारित किये गये हैं। इनमें सर्वप्रथम शासक के लिये यह अनिवार्य पूर्वशर्त है कि वह सर्वगुण सम्पन्न हो, उसे शास्त्रों, शस्त्रों, राजनीति, कूटनीति आदि का यथेश्ठ ज्ञान होना चाहिये। उसका धर्मपरायण और प्रजा पालक होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त उसमें शासन के संचालन हेतु सामान्य योग्यतायें हो होनी ही चाहिये। उसके मंत्रिमण्डल के सभी सदस्य विद्वान, निश्पक्ष, योग्य और चरित्रवान होने चाहिये। सभी राजसेवक योग्य, ईमानदार, विश्वसनीय, निष्ठावान तथा अच्छे आचरण वाले हों। इतना ही नहीं प्रजा को भी चरित्रवान और राजभक्त होना चाहिये। इन विद्वानों द्वारा कल्पित उपरोक्त व्यवस्था एक आदर्श व्यवस्था है तथा इसकी अनुपालना करने पर प्रशासन में भ्रष्टाचार में कमी होने की अपेक्षा की जा सकती है। लेकिन इतना होने के उपरान्त भी प्रशासनिक व्यवस्था से सम्बद्ध व्यक्ति अर्थात् राजकीय अधिकारी–कर्मचारी भ्रष्टाचार में संलिप्त होने से विरत नहीं होंगे। ऐसी अवधारणा उपरोक्त ग्रन्थों के रचनाकारों की रही है। उनकी मंत्रणानुसार भ्रष्टाचार में लिप्त अधिकारियों तथा कर्मचारियों को कठोरतम दण्ड यथा उनकी सम्पूर्ण संपत्ति छीनकर देश से निश्काशित करने अथवा वध करने तक को आवश्यक और न्यायोचित माना गया है।

प्रसंगाधीन ग्रन्थों के रचनाकारों द्वारा प्रशासन में भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के कारण राजाओं/शासकों को इहलोक तथा परलोक में अनेक लाभ होने की बात कही है, वहीं राजा द्वारा ऐसा करने में असफल रहने पर उसके विरूद्ध विद्रोह होने, उसके शासन का अन्त होने आदि अनिश्ठों के अतिरिक्त मरणोपरान्त स्वर्ग प्राप्ति से वंचित रहने का भय भी दिखाया गया है। सारतः कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में भ्रश्टाचार की प्रवृति ज्यादा थी लेकिन कठोर दण्ड के प्रावधानों के परिणामस्वरूप उस प्रवृति ने वर्तमान की भांति विकराल रूप धारण नहीं किया था। इससे प्रेरणा लेकर वर्तमान में भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने हेतु कठोर दण्ड देने के संदर्भ में सोचा जा सकता है और हो सकता है भय के कारण राजसेवक भ्रष्टाचार से विरत रहने के लिये सोचना प्रारंभ करे।

संदर्भ एवं टिप्पणियां

1. ऐसी मान्यता है कि प्राचीन काल में हमारे देश का नाम आर्यावृत था। इसका वर्तमान नाम 'भारत वर्श' राजा दुश्यन्त तथा शकुन्तला के पुत्र भरत के नाम पर पड़ा। महाकवि कालीदास द्वारा रचित 'अभीज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक के अन्तर्गत एक ऐसा दृश्य प्रस्तुत किया गया जिसमें एक मछुआरे द्वारा राजा दुश्यन्त की खोयी हुई अंगुठी राजसेवकों के माध्यम से राजदरबार में पहुंचाई गयी तथा मछुआरे को द्वार पर ही रोक लिया गया। अंगुठी को देख कर राजा हर्शित हुआ तथा उस अंगुठी को लाने वाले के लिये उपहार भिजवाया। उस उपहार में से राजसेवकों द्वारा आधा हिस्सा (रिश्वत के रूप में) मांगने तथा मछुआरे द्वारा राजसेवकों के लिये मदिरापान करवाने की व्यवस्था करने का चित्रण किया गया है। यह चित्रण तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा रिश्वतखोरी की प्रवृति के विद्यमान होने की तरफ स्पश्ट संकेत करता है। विस्तार हेतु महाकवि कालीदास प्रणीत – अभीज्ञान शाकुन्तलम् प्रभाकर शास्त्री तथा रूप नारायण त्रिपाठी (व्याख्याकार), (जयपुर, पंचशील प्रकाशन, 2001) छठा अंक, पृ. 293–303 दृश्टव्य है।
2. के. आर. सरकार, पब्लिक फाइनेन्स इन एनसिंयट इंडिया (नई दिल्ली, अभिनव पब्लिकेशन्स, 1978) पृ. VII (प्रिफेस)
3. दांडेकर, आर. एन., ''सिविलाइजेशन ऑव गुप्ता एज'', आर. सी. मजूमदार (एडिटर), ए कम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑव इंडिया वॉल. 3, पार्ट–1, (नई दिल्ली, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 1981) पृ. 288–311
4. यहां क्षत्रिय तथा ब्राह्मण शब्दों का तात्पर्य किसी विशेष वर्ण अथवा जाति से न होकर शासक तथा विधान/ग्रन्थों का सृजन करने वाले व्यक्तियों से है।
5. मनुस्मृति, हरगोविन्द शास्त्री (हिन्दी व्याख्याकार), (वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, ाश्टम् संस्करता, वि.सं. 2057) 7/2–3 पृ. 306
6. मनु – 7/123–124, पृ. 334
7. तत्रैव – 9/258–260, पृ. 517
8. तत्रैव – 9/249, पृ. 515, 9/253–254, पृ. 516
9. शुक्रनीतिः, जगदीश चन्द्र मिश्र (व्याख्याकार) (वाराणसी चौखम्बा सुर भारती प्रकाशन 1998) 1/297, पृ. 114–117
10. तत्रैव – 2/66, पृ. 171
11. तत्रैव – 2/172, पृ. 206

❖◆❖